जोरा शुगर मिल्स (पी) लिमिटेड।

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य और अन्य

19 अप्रैल, 1965

[पी. बी. गजेन्द्रगडकर, सी. जे., के. एन. वांचू,

एम. हिदायतुल्ला, जे. सी. शाह और एस. एम. सिकरी, जे. जे.]

गन्ना उपकर (विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1961 (1961 का केंद्रीय अधिनियम 38)। धारा 3 गन्ना उपकर लगाने वाले राज्य के कृत्य अधिकाराहित पाए गए-केंद्रीय अधिनियम राज्य अधिनियमों के प्रावधानों को अपनाता है और उसके तहत किए गए आंकलन और संग्रह को मान्य करता है। केंद्रीय अधिनियम, क्या वैध है?

मध्य प्रदेश गन्ना (आपूर्ति और क्रय विनियमन) अधिनियम 1958 (1959 का 1) के तहत गन्ने पर एक उपकर लगाया गया था और इस उद्देश्य के लिए गन्ना कारखाने को 'स्थानीय क्षेत्र'माना गया था। डायमंड शुगर मिल्स मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस तरह का शुल्क वैध नहीं था। इस फैसले के बाद मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने इसे रद्द कर दिया। धारा 23, जो उपरोक्त मध्य प्रदेश अधिनियम सं. 1, 1959 की चार्ज धारा थी। कई अन्य राज्यों में ऐसे

अधिनियम थे जो इसी दुर्बलता से पीड़ित थे और इस स्थिति से निपटने के लिए संसद ने गन्ना उपकर (वैधीकरण अधिनियम 1961 (1961 का 38) पारित किया। धारा 3 द्वारा अधिनियम वैध बनाया गया। अधिनियम की धारा 3 द्वारा, विभिन्न राज्य अधिनियमों के तहत इसके प्रारंभ होने से पहले किए गए सभी आकलन और संग्रह और यह निर्धारित किया गया कि राज्य अधिनियमों के सभी प्रावधानों के साथ-साथ राज्य अधिनियमों के तहत की गई प्रासंगिक अधिसूचनाओं, नियम आदि धारा 3 का हिस्सा माना जाएगा। इसके अलावा, यह माना जाना था कि उक्त धारा राज्य अधिनियमों के तहत उपकर लगाए जाने, मूल्यांकन किए जाने और एकत्र किए जाने के सभी भौतिक समय पर मौजूद थी। अपीलार्थी, एक चीनी कारखाने को वर्ष 1959-60 और 1960-61 के लिए उपकर का भुगतान करने के लिए कहा गया था। हालाँकि, इसने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका में शुल्क को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने याचिका खारिज कर दी, अपीलार्थी प्रमाणपत्र के साथ इस न्यायालय में आया था।

अपीलार्थी की ओर से आग्रह की गई दलीलें इस प्रकार थींः (1) अधिनियम के सत्यापन ने जो किया वह राज्य विधानमंडलों की विधायी अक्षमता को दूर करने का प्रयास था, जो संबंधित राज्य विधानमंडलों में विधायी क्षमता के अभाव के आधार पर अमान्य थे; (2) संसद ने विचाराधीन अधिनियम को अपने स्वयं के उपकर लगाने के उद्देश्य से नहीं,

बल्कि संबंधित राज्यों को उन राशियों को बनाए रखने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से पारित किया था जो उन्होंने अवैध रूप से एकत्र की थीं। इसलिए यह अधिनियम कानून का एक रंगीन टुकड़ा था; (3) यह अधिनियम भारत संघ के प्रयोजनों के लिए पारित नहीं किया गया था और उपकरों की वसूली जो इसके द्वारा पूर्वव्यापी रूप से अधिकृत थी, भारत की संचित निधि में जाने की संभावना नहीं थी; (4) गन्ना पेराई सत्र 1 अक्टूबर और 30 जून के बीच में था। गन्ना विकास परिषद् जिसका गठन 26 अगस्त, 1960 को किया गया था। वर्ष 1950-60 की मांग की अवधि के दौरान अस्तित्व में नहीं था। यह मांग एक 'शुल्क'थी और ऐसी अवधि के लिए इस तरह के शुल्क की वसूली करना अवैध था, जिसके दौरान परिषद बिल्कुल भी अस्तित्व में नहीं था और कोई सेवा प्रदान नहीं कर सकता था, जो कुछ भी।

अभिनिर्धारित किया कि : (i) डायमंड शुगर मिल्स में इस न्यायालय के निर्णय को देखते हुए यह स्पष्ट था कि विचाराधीन उपकर राज्यों की विधायी क्षमता से बाहर था। इस निष्कर्ष से यह अनुठा निष्कर्ष निकला था कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 से प्रविष्टि 97 के साथ पढ़े गए अनुच्छेद 248 के संबंध में संसद के पास इस संबंध में विचाराधीन विषयवस्तु से निपटने के लिए विधायी क्षमता होगी। इस प्रकार उपकर लगाने के लिए संसद की वैधानिक क्षमता है जैसा कि धारा 3 द्वारा लगाया

गया था। गन्ना उपकर (वैधीकरण) अधिनियम 1961 (1961 का केंद्रीय अधिनियम 38) के बारे में कोई संदेह नहीं था।

(ii) जब किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कोई अधिनियम अमान्य हो जाता है - इस आधार पर कि राज्य विधानमंडल के पास अपने अंतर्गत आने वाले विषयों से निपटने के लिए विधायी क्षमता नहीं है, तो संसद भी ऐसे अधिनियम को मान्य नहीं कर सकती है, क्योंकि इस तरह के सत्यापन के प्रयास का प्रभाव, सार में, राज्य को किसी ऐसे विषय या विषय के संबंध में विधायी क्षमता प्रदान करना होगा जो संविधान की अनुसूचियों के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार, उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। जहां राज्य विधानमंडलों के विधायी संयोजन से संबंधित प्रासंगिक सूची में कोई विषय शामिल नहीं है, वहां संसद कानून बनाकर राज्य विधानमंडलों को ऐसी विधायी क्षमता प्रदान करने का प्रयास नहीं कर सकती है। [531 जी]

लेकिन विवादित अधिनियम की धारा 3 अमान्य राज्य कानूनों को मान्य करने का इरादा नहीं रखती है। उक्त धारा को अधिनियमित करके संसद ने जो किया है, वह अमान्य राज्य कानूनों को मान्य करना नहीं है, बल्कि उक्त कानूनों के अंतर्गत आने वाले उपकर के संबंध में एक कानून बनाना है और यह प्रदान करना है कि कानून पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा। संसद जानती थी कि संबंधित राज्य अधिनियम अमान्य थे क्योंकि राज्य

विधानमंडल उन्हें लागू करने में सक्षम नहीं थे। संसद यह भी जानती थी कि वह उक्त अमान्य राज्य कानूनों के दायरे में आने वाले विषय के संबंध में एक अधिनियम बनाने के लिए पूरी तरह से सक्षम थी। हालाँकि, संसद ने निर्णय लिया कि उपकर की वसूली के संबंध में विस्तृत और लंबे प्रावधान करने के बजाय, एक समग्र प्रावधान करना अधिक सुविधाजनक होगा जैसे कि धारा 3 में निहित है। धारा 3 का स्पष्ट अर्थ यह है कि राज्य अधिनियमों की सामग्री और प्रासंगिक प्रावधानों के सा-साथ उसके तहत जारी या बनाये गए अधिसूचनाओं, आदेशों और नियमों के प्रावधानों को धारा 3 में शामिल किया गया है और सभी भौतिक समय पर इसमें शामिल माना जाएगा। दूसरे शब्दों में धारा 3 का प्रावधान यह है कि इसके आदेश और बल द्वारा संबंधित उपकर की वसूली की गई मानी जाएगी, क्योंकि उक्त उपकर की वसूली के संबंध में प्रावधान अधिनियम में ही शामिल किए गए हैं। इसलिए इस संसद के आदेश के तहत उपकर की वसूली की गई मानी जाएगी। [532 सी-एच]

(iii) जहां किसी कानूनी अधिनियम की वैधता को चुनौती दी जाती है। इस आधार पर कि यह एक रंगीन विधान है, उन्होंने अदालत की संतुष्टि के लिए जो साबित किया है वह यह है कि हालांकि यह अधिनियम प्रत्यक्ष रूप से विचाराधीन विधायिका की विधायी क्षमता के भीतर है, लेकिन वास्तव में यह उस क्षेत्र को शामिल करता है जो इसके विधायी

दायरे से बाहर है। हालाँकि धारा 3 को पारित करते समय संसद ने संबंधित राज्य क्षेत्रों में निर्दिष्ट उपकरों और कमीशनों की तारीख से उसके द्वारा किये गये तरीके से वसूली प्रदान करने के लिये अपनी निस्संदेह विधायी क्षमता का प्रयोग किया। इसलिए इस अधिनियम पर एक रंगीन कानून होने के आधार पर हमला नहीं किया जा सकता था। [533 एफ-एच]

(iv) किसी अधिनियम की वैधता को विधायिका की विधायी क्षमता के प्रकाश में आंका जाना चाहिए। जो अधिनियम को पारित करता है और कुछ मामलों में इस प्रश्न के संदर्भ में जांच की जानी चाहिए कि क्या नागरिकों के मौलिक अधिकार का अनुचित तरीके से उल्लंघन किया, या अन्य विचार जो उस संबंध में प्रासंगिक हो सकते हैं। लेकिन आम तौर पर जब न्यायालय अधिनियम की वैधता के बारे में सवाल पर विचार कर रही हो तो किसी अधिनियम द्वारा जुटाई गई धनराशि से किस तरह निपटा जाएगा, इसकी जांच करना अनुचित, वास्तव में अवैध होगा। अतः यह तर्क देना अनुज्ञेय नहीं था कि अधिनियम अमान्य था क्योंकि विचाराधीन निधि भारत की संचित निधि में नहीं जाएगी। [535 ई-एच]

(v) यदि संग्रह वैधानिक प्रावधानों के तहत किए जाते हैं जो वैध हैं क्योंकि वे राज्य विधानमंडल की विधायी क्षमता से बाहर के किसी विषय से निपटते हैं, तो संसद अपनी निस्संदेह विधायी क्षमता का प्रयोग करते हुए, राज्य के तहत किए गए संग्रह से उनके चरित्र को परिवर्तित करके

उक्त संग्रह को पूर्वव्यापी रूप से मान्य करने वाला कानून पारित कर सकती है, अन्यथा धारण करने का मतलब सातवीं अनुसूची की सूची । में प्रविष्टि 97 के साथ पढ़े गए अनुच्छेद 248 द्वारा संसद को प्रदत्त विधायी क्षमता की चैड़ाई और आयाम में कटौती करना होगा। [536 सी-ई]

(vi) मध्यप्रदेश अधिनियम की धारा 6 द्वारा निर्धारित गन्ना विकास परिषद् के कार्यों से पता चलता है कि परिषद से अपीलकर्ता की तरह मिलों को सेवा प्रदान करने की उम्मीद है और इसलिए यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि जो कमीशन धारा 21 मध्यप्रदेश अधिनियम के तहत वसूल करने के लिए अधिकृत था। एक शुल्क है। शुल्क का अधिरोपण आम तौर पर प्रतिदान के आधार पर समर्थित है। हालांकि, परिषद का गठन पहली बार 26 अगस्त, 1960 को किया गया था। दूसरे शब्दों में, परिषद वर्ष 1959-60 से संबंधित मांग के अंतर्गत आने वाली सभी अवधियों में अस्तित्व में नहीं थी। उक्त अवधि के दौरान इसने कोई भी सेवा प्रदान नहीं की। मामले के विशेष तथ्यों पर वर्ष 1959-60 के लिए कमीशन के माध्यम से किसी भी राशि का वैध रूप से दावा नहीं किया जा सकता है। शुल्क का अधिरोपण जीन रैली है जो क्विड प्रो क्वो के आधार पर समर्थित है। हालाँकि परिषद का गठन पहली बार 26 अगस्त, 1960 को किया गया था। दूसरे शब्दों में परिषद वर्ष 1959-60 से संबंधित मांग द्वारा कवर की गई अवधि के दौरान अस्तित्व में नहीं थी। उक्त अवधि के

दौरान इसने कोई सेवा प्रदान नहीं की। इसलिए मामले के विशेष तथ्यों पर वर्ष 1959-60 के लिए कमीशन के माध्यम से किसी भी राशि का वैध रूप से दावा नहीं किया जा सकता है। [537 ए-बी; 538 सी-डी]

इस अपील में कानून का प्रमुख प्रश्न जो उत्पन्न होता है वह केन्द्रीय अधिनियम की वैधता के संबंध में है- गन्ना उपकर (विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1961 (1961 का सं. 38) (जिसे इसके बाद 'अधिनियम'कहा जाता है)। यह इस तरह से उत्पन्न होता है। अपीलार्थी, जोरा शुगर मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत निगमित एक निजी सीमित देयता कंपनी है। इसका पंजीकृत कार्यालय जोरा में है जो इसके स्वामित्व वाली चीनी मिलों के परिसर में है। अपीलार्थी चीनी का निर्माण करता है और व्यवसाय चलाता है, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त वस्तु के उत्पादन और बिक्री का 1955 से जब इसे शामिल किया गया था। चीनी के उत्पादन के लिए गन्ने का मौसम आम तौर पर दिसंबर से मार्च की अवधि में होता है, और गन्ना पेराई का मौसम आमतौर पर 1 अक्टूबर से शुरू होता है और 30 जून को समाप्त होता है।

प्रत्यर्थी संख्या 1, मध्य प्रदेश राज्य ने अधिनियमित किया मध्य प्रदेश गन्ना (आपूर्ति और खरीद विनियमन) अधिनियम, 1958 (1959 का सं. 1) (जिसे इसके बाद 'मध्य प्रदेश अधिनियम'कहा जाता है)। उक्त अधिनियम की धारा 23 ने गन्ना उपकर को देय बना दिया। जैसा उसके

द्वारा निर्धारित किया गया है। उक्त अधिनियम के तहत बनाए गए मध्य प्रदेश गन्ना (आपूर्ति और खरीद विनियमन) नियम, 1959 के नियम 60 से 63 में उपकर के संग्रह की विधि का प्रावधान है। उक्त अधिनियम की धारा 21 कमीशन के भुगतान के लिए निर्धारित करती है। गन्ना विकास परिषद, जिसका गठन धारा 5 के तहत प्रस्तावित किया गया था। नियम 45 से 47 उक्त परिषद को देय कमीशन की मात्रा निर्धारित करते हैं और इस तरीके का उल्लेख करते हैं, जिसमें उक्त भुगतान किया जाना है।

मध्य प्रदेश अधिनियम की धारा 23 की वैधता को भोपाल शुगर इंडस्ट्रीज बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1961 की विविध याचिका संख्या 27) मामले में संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उक्त अधिनियम की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिका की सुनवाई उक्त उच्च न्यायालय के समक्ष होने से पहले, यूपी गन्ना उपकर अधिनियम, 1956 (1956 का यूपी अधिनियम XXII) में एक समान प्रावधान को इस न्यायालय ने पहले ही असंवैधानिक करार दिया था । डायमंड शुगर मिल्स लिमिटेड एवं अन्य। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1) मध्य प्रदेश और यूपी दोनों अधिनियमों में चार्जिंग धाराओं की सामान्य विशेषता यह थी कि उन्होंने संबंधित राज्य सरकारों को उपयोग के लिए किसी कारखाने के परिसर में गन्ने के प्रवेश पर उपकर लगाने के लिए अधिकृत किया था। उसमें उपभोग या बिक्री। डायमंड शुगर

मिल्स लिमिटेड (1) के मामले में इस न्यायालय के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि किसी कारखाने का परिसर संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची ॥ में प्रविष्टि 52 के अर्थ के तहत 'स्थानीय क्षेत्र'नहीं है, और इसलिए यूपी विधानमंडल द्वारा पारित अधिनियम उसकी क्षमता से परे था। इस तर्क को बरकरार रखा गया. "हमारी राय है", दास गुप्ता जे. ने कहा, जिन्होंने न्यायालय के बहुमत के लिए बात की, "कि संविधान की प्रविष्टि 52 में "स्थानीय क्षेत्र"शब्द से जुड़ा उचित अर्थ (जब क्षेत्र कानून लागू करने वाले राज्य का हिस्सा है) एक स्थानीय निकाय जैसे नगर पालिका, एक जिला बोर्ड, एक स्थानीय द्वारा प्रशासित क्षेत्र है बोर्ड, यूनियन बोर्ड, पंचायत या उसके जैसा। इसलिए, किसी कारखाने का परिसर "स्थानीय क्षेत्र"नहीं है। इस निर्णय के बाद मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने भोपाल चीनी उद्योग में लागू मध्य प्रदेश अधिनियम की धारा 23 को रद्द कर दिया और उस सीमा तक रिट याचिका को अनुमति दे दी। यह निर्णय 31 अगस्त, 1961 को सुनाया गया था।

गन्ना विकास परिषद को कमीशन के भुगतान का प्रावधान करने वाले मध्य प्रदेश अधिनियम की धारा 21 की वैधता को भोपाल शुगर इंडस्ट्रीज लिमिटेड द्वारा एक अन्य द्वारा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी । रिट याचिका (1961 की विविध याचिका संख्या 340)। उक्त उच्च न्यायालय ने माना कि: विवादित धारा द्वारा भुगतान

करने के लिए निर्देशित कमीशन एक "शुल्क"था और राज्य सरकार को नियमों को निर्धारित करके उक्त प्रावधान को लागू करने के लिए प्रतिनिधिमंडल वैध प्रतिनिधिमंडल के बराबर था और इस तरह, विवादित धारा थी किसी भी प्रभावी चुनौती के लिए तैयार नहीं। परिणाम में, धारा 21 को बरकरार रखा गया। यह निर्णय 30 जनवरी, 1962 को सुनाया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि डायमंड शुगर मिल्स(1) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप, यूपी गन्ना उपकर (मान्यता) अधिनियम, 1961 केंद्रीय विधानमंडल द्वारा 21 मार्च, 1961 (1961 की संख्या IV) को पारित किया गया था।), और इसे उसी दिन राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई। यह उल्लेख किया जा सकता है कि डायमंड शुगर मिल्स (2) के मामले में इस न्यायालय का निर्णय 13 दिसंबर, 1960 को सुनाया गया था, और संसद ने सोचा कि उक्त अधिनियम के तहत उपकर लगाने और संग्रह को वैध बनाना आवश्यक था। उत्तर प्रदेश गन्ना उपकर (मान्यता) अधिनियम, 1961 पारित किया गया।

हालाँकि, संसद को एहसास हुआ कि ऐसे कई अन्य राज्य अधिनियम हैं जो समान दुर्बलता से ग्रस्त हैं, और इसलिए, 11 सितंबर, 1961 को, वह अधिनियम पारित किया गया जिसके साथ हम वर्तमान कार्यवाही में चिंतित हैं। इसे उसी दिन राष्ट्रपति की मंजूरी भी मिल गई है। इस

अधिनियम का उद्देश्य सात अलग-अलग राज्यों के विधानमंडलों द्वारा पारित दस अलग-अलग अधिनियमों के तहत गन्ने पर रोक लगाने और वसूली को वैध बनाना है। अधिनियम की धारा 3 मुख्य मान्य धारा है। धारा 5 को यूपी गन्ना उपकर (मान्यता) अधिनियम, 1961 में निर्दिष्ट प्रावधानों में संशोधन करने के लिए कहा जाता है। उक्त धारा को तुरंत लागू किया गया था, और अधिनियम के शेष प्रावधानों को लागू किया गया था। संबंधित राज्यों में उन तारीखों से लागू होंगे जो केंद्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती हैं और आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित की जा सकती हैं। जहां तक प्रतिवादी राज्य का संबंध है, प्रासंगिक तारीख 26 दिसंबर, 1961 है।

17 मार्च, 1962 को, प्रतिवादी नंबर 2, जिला रतलाम के कलेक्टर ने अपीलकर्ता को एक नोटिस जारी कर गन्ना उपकर के भुगतान की मांग की। प्रासंगिक नियमों के तहत प्रतिवादी राज्य द्वारा निर्धारित दर। उक्त नोटिस में संबंधित नियमों के अनुसार वर्ष 1959- 60 और 1960-61 के लिए गन्ना कमीशन के भुगतान की भी मांग की गई थी।

अपीलकर्ता ने इन मांगों की वैधता को चुनौती दी और इस संबंध में प्रतिवादी नंबर 2 को संबोधित किया। इसमें आरोप लगाया गया कि दोनों मांगें अमान्य थीं, क्योंकि जिस अधिनियम के अधिकार के तहत उन्हें बनाया गया था, वह स्वयं अधिकार क्षेत्र से बाहर और असंवैधानिक था।

वर्ष 1959-60 के लिए गन्ना कमीशन की मांग के संबंध में, अपीलकर्ता ने एक अतिरिक्त (साउंड) निकाल दिया कि गन्ना विकास परिषद स्वयं 26 अगस्त, 1960 को अस्तित्व में आई थी, और इसलिए, यह प्रतिवादी संख्या के लिए स्वीकार्य नहीं थी। 2 वर्ष 1959-60 के संबंध में कमीशन की मांग करना। यह भी आरोप लगाया गया कि प्रति मन 3 एनपी की फ्लैट दर पर गन्ना कमीशन की मांग उक्त परिषद द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रस्तावित सेवाओं से संबंधित नहीं थी। और इस प्रकार, अमान्य था।

इन दलीलों का उत्तरदाताओं द्वारा विरोध किया गया। उनकी ओर से आग्रह किया गया कि विवादित अधिनियम वैध था, और उपकर और आयोग की वसूली के लिए प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा की गई मांग पूरी तरह से उचित थी। इन पर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने उसके समक्ष उठे दो व्यापक मुद्दों पर विचार किया। इसने माना है कि विवादित अधिनियम के प्रावधान संवैधानिक रूप से वैध हैं, और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा की गई उपकर की मांग को प्रभावी ढंग से चुनौती नहीं दी जा सकती है। गन्ना कमीशन की मांग के संबंध में, उच्च न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा की गई दलील से प्रभावित नहीं हुआ, विशेष रूप से 1959-60 के गन्ना मौसम के संबंध में और उसका मानना है कि भले ही परिषद अस्तित्व में नहीं आई हो, उक्त परिषद के गठन के लिए प्रावधान करने और इस प्रकार इसे अपीलकर्ता की तरह मिलों को सेवा और सहायता प्रदान करने में सक्षम बनाने की दृष्टि से

मांग की जा सकती है। इसीलिए उच्च न्यायालय ने उस संबंध में अपीलकर्ता की दलीलों को खारिज कर दिया और उसकी रिट याचिका खारिज कर दी। यह फैसला 24 सितम्बर 1963 को सुनाया गया।

इसके बाद अपीलकर्ता ने आवेदन किया और उच्च न्यायालय से एक प्रमाण पत्र प्राप्त किया और यह उक्त प्रमाण पत्र के साथ इस न्यायालय में अपील के माध्यम से आया है। इस प्रकार हमारे निर्णय के लिए मुख्य प्रश्न यह उठता है कि क्या उच्च न्यायालय का यह मानना सही था कि अधिनियम संवैधानिक रूप से वैध है। एक सहायक प्रश्न का भी निर्णय होना बाकी है और वह वर्ष 1959-60 के लिए कमीशन की मांग से संबंधित है।

एक ओर राज्य विधानमंडलों की विधायी क्षमता के संबंध में संवैधानिक स्थिति, और दूसरी ओर प्रश्नगत उपकर के संबंध में केंद्रीय विधानमंडल की स्थिति संदेह में नहीं है। हम पहले ही डायमंड शुगर मिल्स (1) में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर चुके हैं, और उक्त निर्णय के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि विचाराधीन उपकर राज्यों की विधायी क्षमता से बाहर था। यह निष्कर्ष इस अचूक निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि संसद के पास कला से संबंधित विषय-वस्तु से निपटने के लिए विधायी क्षमता होगी। 248 संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची । में प्रविष्टि 97 के साथ पढ़ें। अनुच्छेद 245(1) अन्य बातों के साथ-साथ प्रावधान करता है कि इस

संविधान के प्रावधानों के अधीन, संसद भारत के पूरे क्षेत्र या उसके किसी हिस्से के लिए कानून बना सकती है; और प्रासंगिक प्रविष्टि किसी भी अन्य मामले से संबंधित है जो सूची 11 या सूची III में शामिल नहीं है, जिसमें उन सूचियों में से किसी भी कर का उल्लेख नहीं है। अनुच्छेद 248 प्रदान करता है:

> "(1) संसद के पास समवर्ती सूची या राज्य सूची में शामिल नहीं किए गए किसी भी मामले के संबंध में कोई भी कानून बनाने की विशेष शक्ति है।
>
> (2) ऐसी शक्ति में किसी भी सूची में उल्लिखित न किए गए कर को लागू करने वाला कोई भी कानून बनाने की शक्ति शामिल होगी।"

इसमें कोई विवाद नहीं है कि यदि संसद उपकर लगाने के संबंध में कानून बनाने का इरादा रखती है जैसा कि अधिनियम धारा 3 द्वारा निर्धारित किया गया है। इसकी विधायी क्षमता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ता के लिए श्री पाठक, हालांकि, यह तर्क देते हैं कि अधिनियम का उद्देश्य क्या करना है और वास्तव में और सार रूप में, अमान्य राज्य क़ानूनों को मान्य करना है: दूसरे शब्दों में, ऐसा अधिनियम संसद द्वारा अधिनियमित प्रावधानों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है ऐसा, लेकिन यह संसद द्वारा उन कानूनों को मान्य करने के प्रयास का

प्रतिनिधित्व करता है जो इस आधार पर अमान्य हैं कि राज्य विधानमंडल जिन्होंने उक्त कानून बनाए थे, उनके पास ऐसा करने की कोई विधायी क्षमता नहीं थी। यही मुख्य आधार है जिस पर हमारे सामने अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई है। निःसंदेह यह आधार दो-तीन अलग-अलग रूपों में हमारे सामने रखा गया है।

इन विवादों से निपटने से पहले, अधिनियम के प्रावधानों का उल्लेख करना आवश्यक है। अधिनियम का उद्देश्य कुछ राज्य अधिनियमों के तहत गन्ने पर उपकर लगाने और संग्रह को मान्य करने और यूपी गन्ना उपकर (मान्यता) अधिनियम , 1961 में संशोधन करने के लिए पारित किया गया है। धारा 5 जिसने इस बाद वाले उद्देश्य को प्राप्त किया है, उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। उक्त धारा से हम वर्तमान अपील में चिंतित नहीं हैं। धारा 1(2) उस तारीख का प्रावधान करती है जिससे अधिनियम के प्रावधान विभिन्न राज्यों में लागू होंगे; और जैसा कि हमने पहले ही देखा है, संबंधित राज्यों के लिए प्रासंगिक तारीखें वे तारीखें होंगी जो केंद्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना होंगी और आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित होंगी। धारा 2 एक परिभाषा अनुभाग है; धारा 2(ए) "उपकर"को किसी भी राज्य अधिनियम के तहत देय उपकर के रूप में परिभाषित करता है और इसमें ब्याज या दंड के माध्यम से ऐसे किसी भी अधिनियम के तहत वसूली योग्य कोई भी राशि शामिल है। धारा 2(बी) एक "राज्य अधिनियम

"को इसके द्वारा निर्दिष्ट दस अधिनियमों में से किसी एक के रूप में परिभाषित करती है जो समय-समय पर संशोधन या अनुकूलन के माध्यम से सात संबंधित राज्यों में लागू थे। फिर इस उपधारा के अंतर्गत दस राज्य अधिनियमों की गणना की गई है। धारा 3 मान्य धारा है, और इसे पढ़ना आवश्यक है। इसका शीर्षक राज्य अधिनियमों के तहत उपकर लगाने और एकत्र करने का सत्यापन है । इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:-

> "3. (1) किसी भी न्यायालय के किसी भी फैसले, डिक्री या आदेश के बावजूद, इस अधिनियम के शुरू होने से पहले किसी भी राज्य अधिनियम के तहत लगाए गए, मूल्यांकन या एकत्र किए गए या लगाए जाने वाले सभी उपकरों को माना जाएगा । कानून के अनुसार वैध रूप से लगाया, मूल्यांकन या संग्रह किया जाता है, जैसे कि राज्य अधिनियम और उसके तहत जारी या बनाए गए सभी अधिसूचनाओं, आदेशों और नियमों के प्रावधान, जहां तक ऐसे प्रावधान ऐसे उपकर लगाने, मूल्यांकन और संग्रह से संबंधित हैं इस धारा में शामिल किया गया था और इसका हिस्सा बनाया गया था और यह धारा सभी भौतिक समयों पर लागू रही थी जब ऐसा उपकर लगाया गया था,

मूल्यांकन किया गया था या एकत्र किया गया था; और तदनुसार, -

(ए) किसी भी राज्य अधिनियम के तहत भुगतान किए गए किसी भी उपकर की वापसी के लिए किसी भी न्यायालय में कोई मुकदमा या अन्य कार्यवाही नहीं की जाएगी या जारी नहीं रखी जाएगी;

(बी) कोई भी न्यायालय किसी भी राज्य अधिनियम के तहत भुगतान किए गए किसी भी उपकर की वापसी का निर्देश देने वाला डिक्री या आदेश लागू नहीं करेगा; और

(सी) इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले किसी राज्य अधिनियम के तहत लगाया गया या मूल्यांकन किया गया कोई भी उपकर, लेकिन ऐसे प्रारंभ से पहले एकत्र नहीं किया गया, उस अधिनियम के तहत प्रदान किए गए तरीके से (जहां आवश्यक हो) उपकर के मूल्यांकन के बाद वसूल किया जा सकता है।

(2) संदेह को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि उपधारा (1) में किसी भी बात को किसी भी व्यक्ति को रोकने वाला नहीं माना जाएगा-

(ए) किसी भी राज्य अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार किसी भी अवधि के लिए किसी भी उपकर के मूल्यांकन पर सवाल उठाने से; या

(बी) किसी भी राज्य अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत उसके द्वारा देय राशि से अधिक भुगतान किए गए किसी भी उपकर की वापसी का दावा करने से।"

धारा 4 में प्रावधान है कि इस अधिनियम में कुछ भी बॉम्बे गन्ना उपकर अधिनियम, 1948 (बॉम्बे अधिनियम संख्या 82, 1948) की धारा 1 1 को मान्य करने वाला नहीं माना जाएगा और तदनुसार उक्त धारा को हटा दिया जाएगा। धारा 5 यूपी गन्ना उपकर (मान्यता) अधिनियम, 1961 के संशोधन को संदर्भित करती है। संक्षेप में, अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में स्थिति यही है।

श्री पाठक का तर्क है कि अधिनियम ने जो किया है वह उन अधिनियमों को मान्य करके राज्य विधानमंडलों की विधायी अक्षमता को ठीक करने का प्रयास करना है जो संबंधित राज्य विधानमंडलों में विधायी क्षमता की अनुपस्थिति के आधार पर अमान्य थे। उनका मामला यह है कि यदि कोई अधिनियम अमान्य है, इसलिए नहीं कि विवादित अधिनियम

को लागू करने वाले विधानमंडल के पास कोई विधायी क्षमता नहीं है, बल्कि इसलिए कि इसके कुछ प्रावधान नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अनुचित रूप से उल्लंघन करते हैं, तो अमान्य प्रावधानों को हटाकर उक्त अधिनियम को वैध बनाना संभव है। इसी प्रकार, यदि राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कोई अधिनियम काफी हद तक वैध है, लेकिन उस हिस्से के संबंध में अमान्य है जो राज्य विधानमंडल की विधायी क्षमता के भीतर नहीं आने वाले क्षेत्र में अतिक्रमण करता है, तो इसके दायरे से अमान्य हिस्से को हटाकर अधिनियम को मान्य करना संभव होगा। वास्तव में, यदि अमान्य प्रावधान अधिनियम के बाकी हिस्सों से अलग किया जा सकता है, तो इसकी वैधता के सवाल से निपटने वाली न्यायालय अकेले अमान्य हिस्से को रद्द कर सकती हैं और क़ानून के शेष हिस्से की वैधता को बरकरार रख सकती हैं। लेकिन जहां किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित एक विवादित अधिनियम इस आधार पर अमान्य है कि राज्य विधानमंडल के पास इसके अंतर्गत आने वाले विषय से निपटने के लिए विधायी क्षमता नहीं है, तो संसद भी ऐसे अधिनियम को मान्य नहीं कर सकती है, क्योंकि इस तरह के प्रयास के प्रभाव से, संक्षेप में, किसी ऐसे क्षेत्र या विषय के संबंध में राज्य विधानमंडल को विधायी क्षमता प्रदान करना होगा, जो संविधान में अनुसूचियों के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार, उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यह स्थिति न तो विवादित है और न ही विवादित हो सकती है। यदि यह दिखाया जाता है कि विवादित अधिनियम

अमान्य राज्य क़ानूनों को मान्य करने के अलावा और कुछ नहीं करने का इरादा रखता है, तो निश्चित रूप से, ऐसा मान्य अधिनियम संसद की विधायी क्षमता से बाहर होगा। जहां कोई विषय राज्य विधानमंडलों की विधायी क्षमता से संबंधित प्रासंगिक सूची में शामिल नहीं है, वहां संसद, कानून बनाकर, राज्य विधानमंडलों को ऐसी विधायी क्षमता प्रदान करने का प्रयास नहीं कर सकती है।

हालाँकि, श्री पाठक के तर्क को स्वीकार करने में कठिनाई इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि जिस धारणा पर पूरा तर्क आधारित है, वह धारा 3 के निष्पक्ष और उचित अर्थान्वयन पर उचित नहीं है। धारा 3 का तात्पर्य अमान्य राज्य क़ानूनों को मान्य करना नहीं है। उक्त धारा को अधिनियमित करके संसद ने जो किया है वह अमान्य राज्य क़ानूनों को मान्य करना नहीं है, बल्कि उक्त क़ानूनों के अंतर्गत किए गए उपकर के संबंध में एक कानून बनाना है और यह प्रदान करना है कि उक्त कानून पूर्वव्यापी रूप से लागू होगा। दोनों स्थितियों के बीच एक मौलिक अंतर है। जहां विधायिका एक पूर्ववर्ती अधिनियम को मान्य करना चाहती है जिसे किसी ना किसी कारण से अमान्य घोषित कर दिया गया है, वह उक्त अधिनियम से दुर्बलता को हटाने के लिए आगे बढ़ता है और इसके उन प्रावधानों को मान्य करता है जो किसी भी दुर्बलता से मुक्त हैं। वर्तमान अधिनियम को लागू करने में संसद ने ऐसा नहीं किया है। संसद को पता था कि संबंधित राज्य

अधिनियम अमान्य थे, क्योंकि राज्य विधानसभाओं के पास उन्हें अधिनियमित करने की विधायी क्षमता नहीं थी। संसद को यह भी पता था कि वह उक्त अमान्य राज्य क़ानूनों के अंतर्गत आने वाली विषय-वस्तु के संबंध में एक अधिनियम बनाने में पूरी तरह सक्षम है। हालाँकि, संसद ने निर्णय लिया कि उपकर की वसूली के संबंध में विस्तृत और लंबे प्रावधान करने के बजाय, धारा 3 में निहित एक सारगर्भित प्रावधान बनाना अधिक सुविधाजनक होगा। धारा 3 का स्पष्ट अर्थ यह है कि राज्य अधिनियम की सामग्री और प्रासंगिक प्रावधानों के साथ-साथ अधिसूचनाओं, आदेशों और उनके तहत जारी या बनाए गए नियमों के प्रावधान भी शामिल हैं और इसे सभी भौतिक समयों पर शामिल माना जाएगा। दूसरे शब्दों में, क्या एस. 3 में प्रावधान है कि इसके आदेश एवं बल से संबंधित उपकर की वसूली हुई मानी जाएगी, क्योंकि उक्त उपकर की वसूली के संबंध में प्रावधान अधिनियम में ही शामिल किए गए हैं। इसलिए, जिस आदेश के तहत उपकर की वसूली की गई मानी जाएगी, वह संसद का आदेश होगा, क्योंकि सभी प्रासंगिक धाराएं, अधिसूचनाएं, आदेश और नियम संसदीय क़ानून द्वारा ही अपनाए गए हैं। इसलिए, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि श्री पाठक का तर्क जिस एकमात्र आधार पर आधारित है वह अमान्य है, क्योंकि उक्त आधार धारा 3 के स्पष्ट अर्थ के साथ असंगत है। जैसा कि हमने पहले ही संकेत दिया है, श्री पाठक इस बात पर विवाद नहीं करते और सही भी हैं कि संसद को प्रश्नगत उपकरों के संबंध में कानून बनाने,

ऐसे कानून के प्रावधानों को विभिन्न राज्यों में लागू करने और उन्हें संचालन में पूर्वव्यापी बनाने का अधिकार है। उनका पूरा विवाद इस बात पर आधारित है कि वे धारा 3 का रिकॉर्ड करते हैं, वास्तविक दायरा और प्रभाव क्या मानते हैं। यदि वह धारा 3 पर जो अधिनियम करता है उसे अस्वीकार कर दिया जाता है तो अधिनियम की अमान्यता के बारे में तर्क को भी इसी तरह खारिज किया जाना चाहिए।

यही तर्क दूसरे रूप में श्री पाठक ने हमारे सामने रखा है। उनका सुझाव है कि विचाराधीन अधिनियम कानून का एक रंग-बिरंगा टुकड़ा है। उनका मामला यह है कि जब संसद को एहसास हुआ कि विभिन्न राज्य कानूनों की अमान्यता के परिणामस्वरूप संबंधित राज्यों को उन व्यक्तियों को बहुत बड़ी रकम वापस करने की समस्या का सामना करना पड़ रहा है जिनसे उपकर वसूल किया गया था, तो उसने वर्तमान अधिनियम पारित किया है। स्वयं का उपकर लगाने के उद्देश्य से, लेकिन संबंधित राज्यों को उस राशि को बनाए रखने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से जो उन्होंने अवैध रूप से एकत्र की है। श्री पाठक का कहना है कि मामले का यह पहलू इस अधिनियम को एक रंगीन कानून बनाता है। हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं।

हालांकि स्पष्ट रूप से एक विधानमंडल ने अपनी शक्तियों की सीमाओं के भीतर कार्य करने के लिए एक क़ानून पारित किया, फिर भी सार स्वयं

में और वास्तव में इसने इन शक्तियों का उल्लंघन किया, जो उचित जांच पर, केवल एक दिखावा या छद्म रूप में दिखाई देता है। यह अवलोकन संक्षिप्त और प्रभावी रूप से इस तर्क के वास्तविक चरित्र को सामने लाता है कि कोई भी कानून रंगीन कानून है। जहाँ इस आधार पर कोई चुनौती दी जाती है, वहाँ न्यायालय की संतुष्टि के लिए यह साबित करना होगा कि यद्यपि यह अधिनियम प्रत्यक्ष रूप से विधानमंडल की विधायी क्षमता के साथ है, लेकिन सार में और वास्तव में यह एक ऐसे क्षेत्र को शामिल करता है जो इसकी विधायी क्षमता से बाहर है। यह ध्यान दिया जाएगा कि जैसे ही मामले के इस पहलू को ध्यान में रखा जाता है, यह तर्क कि अधिनियम एक रंगीन विधान है, हमें धारा 3 के प्रावधानों के सही दायरे और प्रभाव पर वापस ले जाता है। यदि धारा 3 का वास्तविक दायरा और प्रभाव जैसा कि श्री पाठक मानते हैं, तो निश्चित रूप से यह अधिनियम इस आधार पर अमान्य होगा कि यह एक रंगीन कानून है। लेकिन अगर धारा 3 का वास्तविक दायरा और प्रभाव। जैसा कि हम पहले ही मान चुके हैं, तो अधिनियम को पारित करने में, संसद ने संबंधित राज्य क्षेत्रों में निर्दिष्ट उपकरों और आयोगों की वसूली के लिए उसके द्वारा इंगित तिथियों और तरीके से प्रावधान करने के लिए अपनी निस्संदेह विधायी क्षमता का प्रयोग किया। जब उक्त उपकरों की वसूली के लिए मांग की गई थी, तो यह माना जाएगा कि वे राज्य अधिनियमों के अनुसरण में नहीं बल्कि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसरण में किए गए थे। इसलिए, हमें नहीं लगता कि इस

तर्क में कोई सार है कि अधिनियम इस आधार पर अमान्य है कि यह एक रंगीन कानून है। श्री पाठक ने अधिनियम की वैधता के खिलाफ एक और तर्क उठाया है। उनका तर्क है कि यह अधिनियम भारत संघ के उद्देश्यों के लिए पारित नहीं किया गया है, और उपकर की वसूली जो इसके द्वारा पूर्वव्यापी रूप से अधिकृत हैं, भारत के समेकित कोष में जाने की संभावना नहीं है। उनका कहना है कि संबंधित राज्यों द्वारा पहले ही वसूली की जा चुकी है और वे अपनी-अपनी समेकित निधियों में चली गई हैं। इस तर्क के समर्थन में, श्री पाठक ने संघ और राज्यों के बीच राजस्व के हस्तांतरण की सामान्य योजना का उल्लेख किया है जो संविधान के भाग XII में निहित प्रासंगिक अनुच्छेदों द्वारा प्रदान की गई है और उन्होंने विशेष रूप से कला के प्रावधानों पर अधिक भरोसा किया है। 266. अनुच्छेद 266, निस्संदेह, दो अलग-अलग समेकित निधियों और सार्वजनिक खातों का प्रावधान करता है, एक भारत के संबंध में और दूसरा संबंधित राज्यों के संबंध में। वह इस प्रकार हैः

> "266. (1) अनुच्छेद 267 के प्रावधानों और इस अध्याय के प्रावधानों के अधीन रहते हुए राज्यों को कुछ करों और शुल्कों की पूरी या शुद्ध आय के हिस्से के समनुदेशन के संबंध में, भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, ट्रेजरी बिल, ऋण या तरीके और साधन अग्रिम

जारी करके उस सरकार द्वारा उठाए गए सभी ऋण और ऋणों के पुनर्भुगतान में उस सरकार द्वारा प्राप्त सभी धन "भारत की समेकित निधि" के हकदार एक समेकित निधि का निर्माण करेंगे, और किसी राज्य की सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, ट्रेजरी बिल, ऋण या तरीके और साधन अग्रिम जारी करके उस सरकार द्वारा उठाए गए सभी ऋण और ऋणों के पुनर्भुगतान में उस सरकार द्वारा प्राप्त सभी धन "समेकित निधि"के हकदार एक समेकित निधि का अर्थान्वयन करेंगे।

(2) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त अन्य सभी सार्वजनिक धन जोरा सागर मिल्स बनाम राज्य (गजेंद्रगढ़कर सी. जे.) 535 के सार्वजनिक खाते में जमा किया जाएगा।

(3) भारत की संचित निधि या किसी राज्य की संचित निधि में से कोई भी धनराशि कानून के अनुसार और इस संविधान में प्रदान किए गए उद्देश्यों और तरीके के अलावा विनियोजित नहीं की जाएगी।"

गौर करने वाली बात यह होगी कि श्री पाठक ने जो विवाद कला के आधार पर उठाया है अनुच्छेद 266 एक धारणा बनाता है और वह यह है

कि विभिन्न राज्यों द्वारा पहले ही वसूल किए गए उपकर भारत के समेकित कोष में स्थानांतरित नहीं किए जाएंगे, बल्कि संबंधित राज्यों के पास ही रहेंगे; और यह कि ऐसी स्थिति कानून को ही अमान्य कर देगी। हम इस तर्क को भी मानने को तैयार नहीं हैं. विवादित अधिनियम के लागू होने के बाद संबंधित राज्यों द्वारा उनके अवैध कानूनों के तहत पहले से ही वसूले गए उपकर का क्या होता है, यह एक ऐसा मामला है जिससे हमें वर्तमान कार्यवाही में कोई सरोकार नहीं है। यह संदिग्ध है कि क्या किसी नागरिक द्वारा अपने मामले के समर्थन में यह दलील उठाई जा सकती है कि केंद्रीय अधिनियम अमान्य है क्योंकि इसके द्वारा जुटाए गए धन का निपटान आम तौर पर भाग XII के प्रावधानों या विशेष रूप से अनुच्छेद 266 के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया जाता है। हालाँकि, हम यह मान लेंगे कि इस अपील के उद्देश्य के लिए एक नागरिक द्वारा ऐसी याचिका दायर की जा सकती है। फिर भी, यह समझना मुश्किल है कि अधिनियम को अमान्य कैसे कहा जा सकता है क्योंकि इसके तहत वसूल किए गए उपकर को संविधान द्वारा प्रदान किए गए तरीके से नहीं निपटाया जाता है। अधिनियम की वैधता का निर्णय विधानमंडल की विधायी क्षमता के आलोक में किया जाना चाहिए जो अधिनियम को पारित करता है और कुछ मामलों में इस प्रश्न के संदर्भ में जांच की जानी चाहिए कि क्या नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अनुचित रूप से उल्लंघन किया गया है, या अन्य विचार जो उस ओर से प्रासंगिक हो सकते हैं। आम तौर पर, जब

न्यायालय स्वयं अधिनियम की वैधता के बारे में प्रश्न पर विचार कर रहा होता है, तो किसी अधिनियम द्वारा जुटाई गई धनराशि को किस तरीके से निपटाया जाएगा, इसकी जांच करना अनुचित और वास्तव में अवैध होगा। जैसा कि हमने अभी बताया है, यदि किसी अधिनियम के तहत वसूल किए गए उपकर के करों को संविधान द्वारा निर्धारित तरीके से नहीं निपटाया जाता है, तो एक नागरिक के पास क्या उपाय हो सकता है और इसे कैसे लागू किया जा सकता है, ऐसे प्रश्न हैं जिन पर हम इस अपील में कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं। इस स्तर पर हम केवल इस बात पर विचार कर रहे हैं कि क्या श्री पाठक द्वारा की गई धारणा पर भी, उनके लिए यह तर्क देना अनुज्ञेय होगा कि जो अधिनियम अन्यथा वैध है, वह अमान्य हो जाता है क्योंकि विचाराधीन निधि भारत की संचित निधि में नहीं जाएगी। वास्तव में, यह तर्क फिर से इस आधार पर आगे बढ़ता है कि संसद ने अधिनियम को पारित किया है, न कि इसके प्रावधानों के तहत की गई वसूली को पूर्वव्यापी रूप से कार्य करने के उद्देश्य से, बल्कि अमान्य राज्य अधिनियमों के तहत की गई उक्त वसूली को मान्य करने के उद्देश्य से; और हम पहले ही इंगित कर चुके हैं कि धारा 3 इस तरह की धारणा पूरी तरह से नकारात्मक है। इससे पहले, हमें नहीं लगता कि श्री पाठक का यह तर्क देना सही है कि अधिनियम के प्रावधान किसी भी तरह से अमान्य हैं।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यद्यपि श्री पाठक ने अपने तर्क को तीन अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत किया, लेकिन वास्तव में उनकी शिकायत बहुत सरल है। वह कहते है कि धारा 3 अधिनियम का उद्देश्य संभावित रूप से कार्य करना नहीं है; यह केवल पूर्वव्यापी रूप से कार्य करता है और इसका प्रभाव केवल राज्य विधानमंडलों द्वारा अधिनियमित अमान्य वैधानिक प्रावधानों के अनुसरण में अवैध रूप से किए गए संग्रहों को मान्य करने के लिए है। तो, मुख्य सवाल यह हैः यदि संग्रह वैधानिक प्रावधानों के तहत किए जाते हैं जो अमान्य हैं क्योंकि वे राज्य विधानमंडलों की विधायी क्षमता के बाहर किसी विषय से संबंधित हैं, तो क्या संसद अपनी निस्संदेह विधायी क्षमता का प्रयोग करते हुए पूर्वव्यापी कानून पारित कर सकती है? राज्य के कानूनों के तहत किए गए संग्रहों से लेकर पूर्वव्यापी रूप से काम करने वाले अपने स्वयं के क़ानून के तहत किए गए संग्रहों के चरित्र को शामिल करके उक्त संग्रहों को प्रभावी रूप से मान्य करना? हमारी राय में, इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए, क्योंकि अन्यथा धारण करना कला द्वारा संसद को प्रदत्त विधायी क्षमता की चौड़ाई और आयाम में कटौती करना होगा। इस अनुच्छेद 248 सातवीं अनुसूची की सूची । में प्रविष्टि 97 के साथ पढ़ें। ऐसे कानून का पूर्वव्यापी प्रभाव उचित है या नहीं, कुछ मामलों में इस पर विचार किया जा सकता है; लेकिन वह विचार हमारे समक्ष नहीं उठाया गया है और इस मामले की परिस्थितियों में, इसे वैध रूप से उठाया भी नहीं जा सकता है। इसलिए,

हमें यह मानना चाहिए कि अपीलकर्ता के मामले को खारिज करने में उच्च न्यायालय सही था कि अधिनियम अमान्य था, और इसलिए इसके प्रावधानों के तहत उपकर या कमीशन के लिए कोई मांग नहीं की जा सकती है। हालाँकि, एक सहायक प्रश्न है जिस पर अभी भी विचार किया जाना बाकी है और वह वर्ष 1959-60 के लिए उपकर आयोग की मांग से संबंधित है। अपीलकर्ता का मामला यह है कि यह मांग अमान्य है। इस बिंदु के संबंध में भौतिक तथ्य विवाद में नहीं हैं। हमने पहले ही देखा है कि गन्ना पेराई सत्र आमतौर पर 1 अक्टूबर से 30 जून के बीच होता है, और गन्ना विकास परिषद का गठन पहली बार 26 अगस्त, 1960 को किया गया था। दूसरे शब्दों में, परिषद उस अवधि के दौरान अस्तित्व में नहीं थी। जो वर्ष 1959-60 से संबंधित मांग के अंतर्गत की गई थी। मध्य प्रदेश अधिनियम की धारा 21 गन्ने की खरीद पर कमीशन के भुगतान का प्रावधान करती है; और नियम 45 से 47 उस तरीके को निर्धारित करते हैं जिसमें उक्त भुगतान किया जाना है। यह सच है कि उक्त अधिनियम की धारा 6 द्वारा निर्धारित गन्ना विकास परिषद के कार्यों से पता चलता है कि परिषद से अपीलकर्ता की तरह मिलों को सेवा प्रदान करने की उम्मीद है; और इसलिए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि प्रश्न में कमीशन जिसे धारा के तहत पुनर्प्राप्त करने के लिए अधिकृत किया गया था। धारा21 प्रारंभ में मध्य प्रदेश अधिनियम का और जिसे अब धारा 3 में एक ‘‘शुल्क’’ के तहत वसूल किया गया माना जाएगा। श्री पाठक का तर्क है

कि उस अवधि के लिए इस तरह का शुल्क वसूलना स्पष्ट रूप से अवैध है, जिसके दौरान परिषद अस्तित्व में ही नहीं थी और कोई भी सेवा प्रदान नहीं कर सकती थी।

यह अच्छी तरह से स्थापित है कि शुल्क लगाने का समर्थन आम तौर पर बदले के आधार पर किया जाता है, और इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि वर्ष 1959-60 के लिए विवादित वसूली स्पष्ट रूप से बिना किसी बदले के है और इस तरह, नहीं किया जा सकता है लागू किया गया। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसका मानना था कि क्विड प्रो. क्वो. के सिद्धांत के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शुल्क लगाने या मांगने से पहले वास्तविक सेवा प्रदान की जानी चाहिए। इस दृष्टिकोण के समर्थन में, उच्च न्यायालय ने एचएच सुधींद्र तीर्थ स्वामी बनाम हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती आयुक्त, मैसूर (1) मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों पर भरोसा किया है, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती आयुक्त, मैसूर (1) ने उस मामले में इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए तर्क को खारिज करते हुए कहा कि एस. 76 (1) मद्रास धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 (सं. 1951 का XIX) अमान्य था, शाह, जे, जिन्होंने अदालत की ओर से बात की, ने कहाः "शुल्क की प्रकृति का शुल्क केवल इसलिए उस चरित्र का नहीं रह जाता है क्योंकि इसमें मजबूरी या जबरदस्ती का कोई तत्व मौजूद होता है, और न

ही यह शुल्क का अभिधारणा है कि इसका प्राधिकरण द्वारा प्रदान की जाने वाली वास्तविक सेवाओं से सीधा संबंध होना चाहिए जो सेवा का लाभ प्राप्त करता है। यदि कोई विशिष्ट सेवा प्रदान करने की दृष्टि से, कानून द्वारा शुल्क लगाया जाता है और सेवा को मुख्य रूप से बनाए रखने के लिए खर्चों को एकत्र की गई राशि से पूरा किया जाता है, तो शुल्क और सेवा प्रदान करने के लिए किए गए खर्चों के बीच एक उचित संबंध होने के कारण, शुल्क की प्रकृति में होगा न कि कर की प्रकृति में।

उच्च न्यायालय ने सोचा कि ये टिप्पणियाँ इस दृष्टिकोण को उचित ठहराती हैं कि गन्ना विकास परिषद को भुगतान किए जाने वाले कमीशन के माध्यम से अपीलकर्ता से वैध रूप से शुल्क वसूल किया जा सकता है, भले ही परिषद पूरी अवधि के दौरान अस्तित्व में न आई हो। हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने उस संदर्भ को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है जिसमें उक्त टिप्पणियाँ की गई थीं और उनके प्रभाव का गलत आंकलन किया। हमारे लिए निर्णय लेना आवश्यक नहीं है।क्या सेवा शुल्क के अंतर्गत की गई सेवा पूरी अवधि के लिए प्रदान की जानी चाहिए, या क्या यह आवश्यक है कि सेवा पहले प्रदान की जानी चाहिए और शुल्क उसके बाद वसूल किया जा सकता है। ये अच्छे और अकादमिक प्रश्न वर्तमान मामले में प्रासंगिक नहीं हैं, क्योंकि यह भी सुझाव नहीं दिया गया है कि पूरी अवधि के दौरान परिषद द्वारा कोई भी सेवा प्रदान की गई थी। इस

संबंध में इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि धारा 23(1) मध्य प्रदेश अधिनियम के में अन्य बातों के साथ-साथ यह आवश्यक है कि कमीशन का भुगतान परिषद को उसके द्वारा निर्धारित दर और अनुपात में किया जाना चाहिए। नियमों सहित अन्य वैधानिक प्रावधानों में आगे प्रावधान किया गया है कि खरीद के अवसर पर उक्त कमीशन का भुगतान करने में विफलता पर ब्याज का भुगतान करने का दायित्व होगा और ब्याज के साथ उक्त कमीशन को भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली योग्य बना दिया जाएगा। इन प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, हमारे लिए इस दृष्टिकोण को स्वीकार करना बहुत मुश्किल लगता है कि परिषद को जो कमीशन का भुगतान किया जाना था, उसका भुगतान नहीं किया गया, भले ही परिषद प्रश्न में चीनी पेराई सत्र के दौरान अस्तित्व में ही नहीं थी। इसलिए, इस मामले के विशेष तथ्यों पर, हम संतुष्ट हैं कि वर्ष 1959-60 के लिए कमीशन के माध्यम से किसी भी राशि का वैध दावा नहीं किया जा सका। मांग का नोटिस (अनुलग्नक डी) जो उस संबंध में जारी किया गया है, यह दर्शाता है कि रुपये 1,26,152/86 एनपी वर्ष 1959-60 और 1960-61 के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा अपीलकर्ता से 3 एनपी प्रति मन की दर से गन्ना कमीशन की मांग की गई है। यह सामान्य आधार है कि इस राशि में से रु. 54,037.57 पी वर्ष 1959-60 के लिए आयोग का प्रतिनिधित्व करता है। तदनुसार, हमें यह मानना चाहिए कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा वर्ष 1959-60 के लिए उपकर कमीशन के भुगतान के लिए

54,037.57 पी रुपये की मांग अमान्य है और उस सीमा तक नोटिस रद्द किया जाना चाहिए।

परिणामस्वरूप, अपील काफी हद तक विफल हो जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की जाती है, जो वर्ष 1959-60 के लिए गन्ना कमीशन के भुगतान की मांग के संबंध में संशोधन के अधीन है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अपील खारिज कर दी गई और आदेश संशोधित कर दिया गया।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी हुमा कोहरी आर.जे.एस. न्यायिक मजिस्ट्रेट, भोपालगढ़, जोधपुर जिला द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।